नित्यपाठशिवमहिम्नादिस्तोत्रम्

विषय सूची

॥श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम्॥

(अथर्वशीर्ष की परम्परा में 'गणपत्यथर्वशीर्ष' का विशेष महत्त्व है। प्रातः प्रत्येक मांगलिक कार्य में गणपति-पूजन के अनन्तर प्रार्थना रूप में इस पाठ की परम्परा है। यह भगवान् गणपति का वैदिक स्तवन है। गणपति -महामन्त्र '**ॐ गं गणपतये नमः**' एवं गणेश-गायत्री मन्त्र का भी इसके अन्तर्गत माहात्म्य सहित समावेश है। इस पाठ को करने वाले का किसी भी प्रकार के विघ्न से बाधित न होता हुआ महापातकों से मुक्त हो जाता है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है। इस गणपत्यथर्वशीर्षको यहाँ सूक्त रूप में सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है-)

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्॥१॥

ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि॥२॥

अव त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्। अव धातारम्। अव अनूचानम्। अव शिष्यम्। अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्। अवोत्तरात्तात्। अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधस्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात्॥३॥

गणपति को नमस्कार है, तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो, तुम्हीं केवल कर्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्त्ता और तुम्हीं केवल संहारकर्ता हो, तुम्हीं केवल समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो॥१॥

यथार्थ कहता हूँ। सत्य कहता हूँ॥२॥

तुम मेरी रक्षा करो। वक्ताकी रक्षा करो। श्रोता की रक्षा करो। दाता की रक्षा करो। धाता की रक्षा करो। षडंग वेदविद् आचार्य की रक्षा करो। शिष्य की रक्षा करो। पीछे से रक्षा करो। आगे से रक्षा करो। उत्तर (वाम) भाग की रक्षा करो। दक्षिण भाग की रक्षा करो। ऊपर से रक्षा करो। नीचे की ओर से रक्षा करो। सर्वतोभाव से मेरी रक्षा करो, सब दिशाओं से मेरी रक्षा करो॥३॥

त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि ॥४॥

सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्पदानि ॥५॥

त्वं गुणत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥६॥

गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः अर्धेन्दुलसितम्। तारेण रुद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः सन्धानम्। संहिता सन्धिः। सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः निचृद्गायत्री छन्दः। गणपतिर्देवता। ॐ गं गणपतये नमः ॥७॥

तुम वाङ्मय हो, तुम चिन्मय हो। तुम आनन्दमय हो, तुम ब्रह्ममय हो। तुम सच्चिदानन्द अद्वितीय परमात्मा हो। तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुम ज्ञानमय हो, विज्ञानमय हो ॥४॥

यह सारा जगत् तुमसे उत्पन्न होता है। यह सारा जगत् तुमसे सुरक्षित रहता है। यह सारा जगत् तुममें लीन होता है। यह अखिल विश्व तुममें ही प्रतीत होता है। तुम्हीं भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चतुर्विध वाक् हो ॥५॥

तुम सत्त्व-रज-तम-इन तीनों गुणों से परे हो। तुम भूत-भविष्यत्-वर्तमान-इन तीनों कालों से परे हो। तुम स्थूल, सूक्ष्म और कारण-इन तीनों देहों से परे हो। तुम नित्य मूलाधारचक्र में स्थित हो। तुम प्रभु-शक्ति, उत्साह-शक्ति और मन्त्र-शक्ति-इन तीनों शक्तियों से संयुक्त हो। योगिजन नित्य तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम ब्रह्मा हो, तुम विष्णु हो, तुम रुद्र हो, तुम इन्द्र हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम सूर्य हो, तुम चन्द्रमा हो, तुम (सगुण) ब्रह्म हो, तुम (निर्गुण) त्रिपाद भूः भुवः स्वः एवं प्रणव हो ॥६॥

'गण' शब्द के आदि अक्षर गकार का पहले उच्चारण करके अनन्तर आदिवर्ण

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥८॥

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥९॥

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैक-दन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥ १०॥

अकार का उच्चारण करे। उसके बाद अनुस्वार रहे। इस प्रकार अर्धचन्द्र से पहले शोभित जो 'गं' है, वह ओंकार के द्वारा रुद्ध हो अर्थात् उसके पहले और पीछे भी ओंकार हो। यही तुम्हारे मन्त्र का स्वरूप (ॐ गं ॐ) है। 'गकार' पूर्वरूप है, 'अकार' मध्यमरूप है, 'अनुस्वार' अन्त्यरूप है। 'बिन्दु' उत्तररूप है। 'नाद' संधान है। 'संहिता' सन्धि है। ऐसी यह गणेशविद्या है। इस विद्या के गणक ऋषि है, निचृद् गायत्री छन्द है और गणपति देवता हैं। मन्त्र है-'ॐ गं गणपतये नमः।'॥७॥

एकदन्त को हम जानते हैं, वक्रतुण्डका हम ध्यान करते हैं। दन्ती हमको उस ज्ञान और ध्यान में प्रेरित करें॥८॥

गणपतिदेव एकदन्त और चतुर्बाहु हैं। वे अपने चार हाथों में पाश, अंकुश, दन्त और वरमुद्रा धारण करते हैं। उनके ध्वज में मूषक का चिह्न है। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण तथा रक्तवस्त्रधारी हैं। रक्तचन्दन के द्वारा उनके अंग अनुलिप्त हैं। वे रक्तवर्ण के पुष्पों द्वारा सुपूजित हैं। भक्तों की कामना पूर्ण करने वाले, ज्योतिर्मय, जगत् के कारण अच्युत

एतदथर्वशीर्षं योऽधीते सब्रह्मभूयाय कल्पते। स सर्वविघ्नैर्न बाध्यते। स सर्वतः सुखमेधते। स पञ्चमहापापात्प्रमुच्यते। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। सर्वत्राधीयानोऽपविघ्नो भवति धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति। इदमथर्वशीर्षमशिष्याय न देयम्। यो यदि मोहाद्दास्यति स पापीयान् भवति। सहस्रावर्तनाद् यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत् ॥ ११ ॥

अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति। चतुर्थ्यामनश्नञ्जपति स विद्यावान् भवति। इत्यथर्वणवाक्यम्। ब्रह्माद्यावरणं विद्यात्। न बिभेति कदाचनेति ॥ १२ ॥

तथा प्रकृति और पुरुष से परे विद्यमान वे पुरुषोत्तम सृष्टि के आदि में आविर्भूत हुए। इनका जो इस प्रकार नित्य ध्यान करता है, वह योगी योगियों में श्रेष्ठ है ॥९ ॥

व्रातपति को नमस्कार, गणपति को नमस्कार, प्रमथपति को नमस्कार; लम्बोदर, एकदन्त, विघ्ननाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्ति को नमस्कार है ॥१० ॥

इस अथर्वशीर्ष का जो पाठ करता है, वह ब्रह्मीभूत होता है, वह किसी प्रकार के विघ्नों से बाधित नहीं होता, वह सर्वतोभावेन सुखी होता है, वह पंच महापापों से मुक्त हो जाता है। सायंकाल इसका पाठ करने वाला दिन में किये हुए पापों का नाश करता है, प्रातःकाल पाठ करने वाला रात्रि में किये हुए पापों का नाश करता है। सायं और प्रातःकाल पाठ करने वाला निष्पाप हो जाता है। (सदा) सर्वत्र पाठ करनेवाला सभी विघ्नों से मुक्त हो जाता है एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है। यह अथर्वशीर्ष उसको नहीं देना चाहिये, जो शिष्य न हो। जो मोहवश अशिष्य को उपदेश देगा, वह महापापी होगा। इसकी एक हजार आवृत्ति करने से उपासक जो कामना करेगा, इसके द्वारा उसे सिद्ध कर लेगा ॥११ ॥

यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्यजति स यशोवान् भवति। स मेधावान् भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति। यः साज्यसमिद्भिर्यजति स सर्वं लभते स सर्वं लभते॥१३॥

अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग्ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महापापात् प्रमुच्यते। महादोषात् प्रमुच्यते। स सर्वविद् भवति। स सर्वविद् भवति। य एवं वेद॥ इत्युपनिषत्॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

॥ इति श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम् ॥

जो इस मन्त्र के द्वारा श्रीगणपति का अभिषेक करता है, वह वाग्मी हो जाता है। जो चुतर्थी तिथि में उपवास कर जप करता है, वह विद्यावान् (अध्यात्मविद्याविशिष्ट) हो जाता है। यह अथर्वण-वाक्य है। जो ब्रह्मादि आवरण को जानता है, वह कभी भयभीत नहीं होता है॥१२॥

जो दूर्वांकुरों द्वारा यजन करता है, वह कुबेर के समान हो जाता है। जो लाजा के द्वारा यजन करता है, वह यशस्वी होता है, वह मेधावान् होता है। जो सहस्र मोदकों के द्वारा यजन करता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है। जो घृताक्त समिधा के द्वारा हवन करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है॥१३॥

जो आठ ब्राह्मणों को इस उपनिषद् का सम्यक् ग्रहण करा देता है, वह सूर्य के समान तेजः सम्पन्न होता है। सूर्यग्रहण के समय महानदी में अथवा प्रतिमा के निकट इस उपनिषद् का जप करके साधक सिद्धमन्त्र हो जाता है। सम्पूर्ण महाविघ्नों से मुक्त हो जाता है। महापापों से मुक्त हो जाता है। महादोषों से मुक्त हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है-जो इस प्रकार जानता है। इस प्रकार यह ब्रह्मविद्या है॥१४॥

॥प्रातःकालीन करदर्शनम्॥

कराग्रे वसते लक्ष्मीः, करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते करदर्शनम्॥

॥ भूमि-वन्दना॥

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं, पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

॥ सरस्वती वन्दना॥

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्
हस्ते स्फाटिकमालिकां च विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।

॥ दीपवन्दनम्॥

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्मा, दीपो ज्योतिर्जनार्दनः।
दीपो हरतु मे पापं, पूजादीप नमोस्तु ते।।
शुभं करोतु कल्याणम् आरोग्यं सुखसम्पदम्।
मम बुद्धिप्रकाशाय दीपज्योतिर्नमोस्तु ते।।

॥ दश वैदिकशान्तिमन्त्राः ॥

ॐ शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो! त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥२॥

ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु अमृतस्य देव धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥३॥

ॐ अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणं सवर्चसम् सुमेधा अमृतोक्षितः इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥
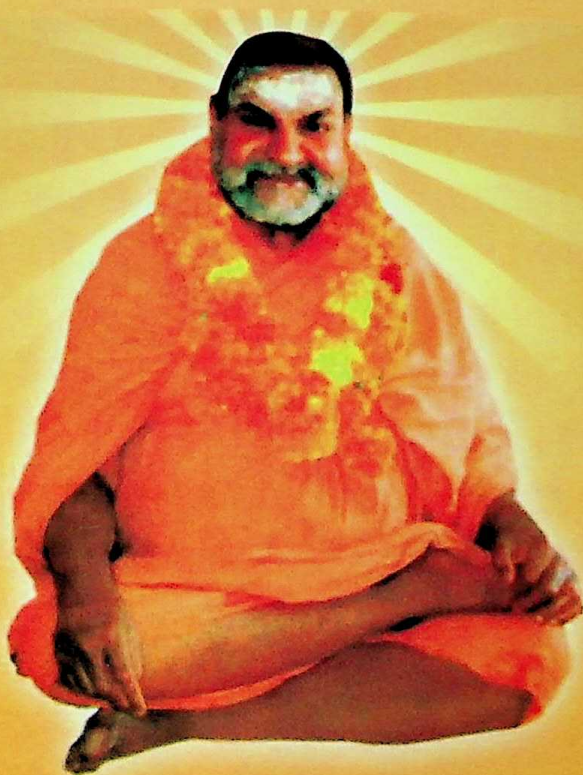
ब्रह्मलीन श्रीमत्स्वामी हरिहर तीर्थ जी महाराज

महिम्नो नापरा स्तुतिः
सबस्तोत्रों में महिम्न उत्तम
स्तोत्र है इस का पाठ वेद
पाठ के तुल्य माना जाताहै
हरिहर तीर्थ

॥ पुण्यस्मृति ॥

श्रीमती सत्या देवी मल्होत्रा

16.10.1924 – 22.07.2007

पुण्यतिथि : (आषाढ़ शुक्ल अष्टमी, सं० 2064)

॥ पुण्यस्मृति ॥

श्री ओम प्रकाश मल्होत्रा

13.04.1920 – 31.01.2013

पुण्यतिथि : (माघ कृष्ण पंचमी, सं० 2070)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥५॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि । सर्वं ब्रह्मौपनिषदम्। माहं ब्रह्म निराकुर्याम्। मा मा ब्रह्म निराकरोद-निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥६॥

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता । मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्। आविरावीर्म एधि । वेदस्य म आणीस्थः। श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥७॥

ॐ भद्रं नो अपिवातय मनः ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥८॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥९॥

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१०॥

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो वंशर्षिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः। सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि॥ ब्रह्मैवाहमस्मि॥

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसन्ततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परम्।

अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्।
स्मर्तृणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः।

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।
तस्मान्माङ्गलिकावुभाविति॥

यैरिमे गुरुभिः पूर्वं पदवाक्यप्रमाणतः।
व्याख्याताः सर्ववेदान्तास्तान्नित्यं प्रणतोऽस्म्यहम्॥१०॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ अथ श्रीशिवनीराजनस्तोत्रम् ॥

ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश!

शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं,

त्वं मां पालय शम्भो कृपया जगदीश!

ॐ हर हर हर महादेव!॥

पारिजातहरिचन्दनकल्पद्रुमनिचयैः, शिव कल्प०

कुसुमितलतावितानैः २, गुञ्जद्भ्रमरमयैः।

उन्मदकोकिलकूजितशिखिकेकारुचिरैः, हर शिखि०

सहकारैश्च कदम्बैः २, भृङ्गवधूमुखरैः॥१॥

ॐ हर हर हर महादेव!॥

मुदितहंसयुगखेलत्सारसपरिवारैः, शिव सार०

भ्रमरयुवतिमुखराम्बुज २, सुभगैः कासारैः।

हारिणिकलधौताद्रेर्देशे मणिरचिते, हर देशे०

भवने सुखमासीनं २, चिन्तामणिनिचिते॥२॥

ॐ हर हर हर महादेव!॥

पीठे गिरिजासहितं चन्द्रकलाधवलं, शिवमिन्दुक०
विशरणशरणं देवं २, विपत्क्षयप्रबलम्।
सम्पद्विधानरसिकं जगदङ्कुरकन्दं, हर जग०
प्रणमामो वयमीशं २, चित्परमानन्दम्॥३॥
ॐ हर हर हर महादेव!॥

यस्याग्रेऽमरवध्वो विबुधाधिपसहिताः, शिव विबु०
मुदितमनोहरवेषा २, लास्यकलामहिताः।
ताथै ताथै तथेति विविधं नृत्यन्ति, हर विविधं०
किङ्किणिनूपुरशिञ्जित २, रुचिरं वल्गन्ति॥४॥
ॐ हर हर हर महादेव!॥

तान्धिक धिनकित्तथेति विविधं वादयते, शिव विविधं०
मृदङ्गममरी काचित् २, रुचिरं नादयते।
वीणां काचिद्रमणी गानविदाभरणा, हर गान०
गायति कलमपराचित् २, चिन्तितहरचरणा॥५॥
ॐ हर हर हर महादेव!॥

रमया सहितो विष्णुर्ब्रह्मा सावित्र्या, शिव ब्रह्मा०

जिष्णुर्नृत्यति भक्त्या २, मुदितमनाः शच्या ॥

तुम्बुरुरुचितं मुरजं विविधं वादयते, हर विविध०

नारदमुनिरपि वीणां २, महतीं नादयते ॥६॥

ॐ हर हर हर महादेव! ॥

तं प्रसन्नवदनं प्रभुमिन्दुकलाभरणं, शिवमिन्दु०

प्रणमामः करुणाब्धिं २, तापत्रयहरणम् ।

देवासुरमणिमुकुटैर्नीराजितचरणं, हर नीरा०

भक्ताभीष्टदकल्पं २, कातरजनशरणम् ॥७॥

ॐ हर हर हर महादेव! ॥

जटाकिरीटे गङ्गां चन्द्रकलां भाले, शिवमिन्दुकलां०

नेत्रेष्विन्दुशिखीना २, नधरे स्मितममले ।

कण्ठे गरलं पाणौ वरमभयं शूलं, हर वर०

पीयूषं कटिदेशे २, कृत्तिं च दुकूलम् ॥८॥

ॐ हर हर हर महादेव! ॥

श्रीगिरिराजकिशोरीमङ्के निदधानं, शिवमङ्के०

निखिलसुरासुरमौलीन् २, चरणेऽमितदानम् ।

शम्भुं तडिदभिगौरं कृतनागाभरणं, हर कृत०

भजति स गच्छति मुक्तिं २, तिमिरापाकरणम् ॥९॥

ॐ हर हर हर महादेव! ॥

निरुपधिकरुणासिन्धुर्भीतत्राणपरः, शिव भीत०
दुःखक्षतये भूयात् २, कातरबन्धुवरः।
यः श्वेतं यमभीतं स्मृतमात्रोऽरक्षत्, हर स्मृतमा०
मा भैषीरिति वादी २, कालं समतक्षत्॥१०॥
ॐ हर हर हर महादेव!॥

आनन्दाय महेशो युष्माकं भवतात्, शिव युष्माकं०
जन्मजरामृतिशोकात् २, करुणानिधिरवतात्।
येन सुरासुरनिवहस्त्रातो विषभीतो, हर त्रातो०
नीलकण्ठ इति भूयो २, निगमगणैर्गीतः ॥११॥
ॐ हर हर हर महादेव!॥

यः सृष्ट्यादिविधानं ब्रह्माच्युतरुद्रैः शिव ब्रह्मा०
निजरूपैस्तनुते यो २, दुर्ज्ञेयः क्षुद्रैः।
तं प्रकाशसुखमच्छं बाधावधिमीशं, हर बाधा०
तनुभेदैरिव भिन्नं २, श्रयत धियामीशम्॥१२॥
ॐ हर हर हर महादेव!॥

ॐ जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश!
शिव जय गौरीनाथ! त्वं मां पालय नित्यं,
त्वं मां पालय शम्भो! कृपया जगदीश!
ॐ हर हर हर महादेव!॥

॥अथ ध्यानम्॥

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम्।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम्॥

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितां साङ्कुशं वामभागे
नानालङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥२॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि॥ ३॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥४॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥ ५॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥६॥

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥७॥

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

॥अथ मन्त्रपुष्पाञ्जलिः॥

हरिः ॐ

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटियुगधारिणे नमः॥१॥

विष्णुब्रह्मेन्द्रदेवै रजतगिरितटात्प्रार्थितो योऽवतीर्य,
शाक्याद्युद्दामकण्ठीरवनखरकराघातसञ्जातमूर्च्छाम्।
छन्दोधेनुं यतीन्द्रः प्रकृतिमगमयत्सूक्तिपीयूषवर्षैः,
सोऽयं श्रीशङ्करार्यो भवदवदहनात्पातु लोकानजस्रम्॥२॥

पूर्णः पीयूषभानुर्भवमरुतपनोद्दामतापाकुलानां,
प्रौढाज्ञानान्धकारावृतविषमपथभ्राम्यतामंशुमाली।
कल्पः शाखी यतीनां विगतधनसुतादीषणानां सदा नः,
पायाच्छ्रीपद्मपादादिममुनिसहितः श्रीमदाचार्यवर्यः॥३॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एक नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥४॥

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।। ५ ॥

श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून्संततमानतोऽस्मि ॥ ६ ॥

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ॥ ७ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ८ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।। ९ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम्।। १० ॥

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।। ११ ॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः।। १२ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १३ ॥

राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ॥ १४ ॥

स मे कामान् कामकामाय मह्यम्।
कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ॥ १५ ॥

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥ १६ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सम्बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः। १७ ॥

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
भक्त्या दत्तानि पूजार्थं गृहाण परमेश्वर ॥ १८ ॥

ॐ तत्सत् मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥ १९ ॥

॥अथ श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्॥

(हिन्दी भावार्थयुतम्)

गजाननं भूतगणाधिसेवतं, कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं, नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

श्रीपुष्पदन्त उवाच

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥१॥

(गन्धर्वराज पुष्पदन्त भगवान् शंकर की स्तुति के उपक्रम में कहते हैं-) 'हे पाप-हरण करने वाले शंकरजी! आपकी महिमा के आर- पारके ज्ञान से रहित सामान्य (अल्पज्ञानवान्) व्यक्तिके द्वारा की गयी आपकी स्तुति यदि आपके स्वरूप (माहात्म्य)-वर्णन के अनुरूप नहीं है तो (फिर) ब्रह्मादि देवों की वाणी भी आपकी स्तुति के अनुरूप नहीं है (क्योंकि वह भी आपके गुणों का सर्वथा वर्णन नहीं कर सकते)। किन्तु जब सभी लोग अपनी-अपनी बुद्धि (-की शक्ति)-के अनुसार स्तुति करते हुए उपालम्भ के योग्य नहीं माने जाते हैं, तब मेरा भी स्तुति करने का (यह) प्रयास अपवाद रहित ही होना चाहिये' (यह प्रयास खण्डनीय नहीं है) ॥१॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥२॥

'आपकी महिमा वाणी और मन की पहुँच से परे है। आपकी उस महिमा को वेद भी (आश्चर्य-) चकित (भयभीत) होकर (निषेध-मुखेन) नेति-नेति कहते हुए आशय रूप में वर्णन करते हैं। फिर तो ऐसे अचिन्त्य महिमामय आप किसकी स्तुति के विषय (वर्ण्य) हो सकते हैं? अर्थात् किसी की स्तुति तदर्थ समर्थ नहीं हो सकती; क्योंकि आपके गुण न जाने कितने प्रकार के हैं अर्थात् अनन्त हैं। फिर भी हे प्रभो! नवीन परम रमणीय आपके (सगुण-) रूप के विषय में वर्णन के लिए किसका मन आसक्त नहीं होता और किसकी वाणी उसमें प्रवृत्त नहीं होती? अर्थात्- सबके मन-वचन सगुणरूप में संलग्न हो जाते हैं-सभी अपनी वाणी को प्रेरित कर वर्णन में लगा देते हैं' ॥२॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन! बुद्धिर्व्यवसिता॥३॥

'हे भगवन्! (हे ब्रह्मस्वरूप महादेव) मधु से सिक्त-सी अत्यन्त मधुर एवं परम उत्तम अमृतमय वेदवाणी की रचना करने वाले आपको, क्या देव गुरु बृहस्पति की वाणी भी आपके गुणों को प्रकाशित कर, आपको चमत्कृत कर सकती है? (कदापि नहीं) फिर भी हे त्रिपुरारि! मेरी बुद्धि आपके गुणानुवादजनित पुण्य से अपनी इस (मलिन वासनासे भरी अतएव अपवित्र) वाणी को पवित्र करने के लिये (ही) आपके गुण-कथन के द्वारा (की जाने वाली) स्तुति के विषय में उद्यत है।' न कि अपने स्तुति-कौशल से आपका अनुरंजन करूँगा-यह मेरा अभिप्राय है॥३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः॥४॥

'हे वर देने वाले शिवजी! आप विश्व की सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं- ऐसा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद-(वेदत्रयी) निष्कर्ष रूप से वर्णन करते हैं। इसी प्रकार तीनों गुणों से विभिन्न त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा-विष्णु-महेश)-में बँटा हुआ जो इस ब्रह्माण्ड में आपका वह प्रख्यात (रचनात्मक, पालनात्मक एवं संहारत्मक) ऐश्वर्य है, उसके विषय में खण्डन करने के लिए कुछ जड़ बुद्धि अकल्याणभागी (मन्दों) अभागों (नास्तिकों)- को मनोहर लगनेवाला पर वास्तव में अशोभनीय या हानिकारक व्यर्थ का मिथ्या प्रलाप (बकवाद) उठाते है'॥४॥

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः।। ५॥

'हे वरद भगवन्!' वह विधाता त्रिभुवन का निर्माण करता है तो उसकी कैसी चेष्टा होती है? उसका स्वरूप क्या है? फिर उसके साधन क्या हैं? आधार अर्थात् जगत् का उपादान कारण क्या है?-इस प्रकार का कुतर्क, सब तर्कों से परे अचिन्त्य ऐश्वर्य वाले आपके विषय में निराधार एवं नगण्य (उपेक्षित) होता हुआ भी सांसारिक (साधारण) जनों को भ्रम में डालने के लिये कुछ मूर्खों को वाचाल बना देता है' ॥५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे।। ६॥

'हे देवश्रेष्ठ ! अवयव वाले होते हुए भी ये पृथिव्यादि लोक क्या बिना जन्म के ही हैं? (नहीं, कदापि नहीं;) क्या विश्व की सृष्टि-पालन-संहार आदि क्रियाएँ (अधिष्ठान) कर्ता के माने बिना सम्भव हो सकती हैं? या ईश्वर के बिना कोई सामान्य जीव ही अधिष्ठान या कर्त्ता हो सकता है? (नहीं; क्योंकि) यदि असमर्थ जीव ही कर्त्ता है तो चौदह भुवनों की सृष्टि के लिये उसके पास क्या साधन हो सकता है? (इस प्रकार आपके अस्तित्व के प्रमाण सिद्ध होने पर भी) यतः वे (जड़बुद्धि) शंका करते हैं, अतः वे बड़े अभागे हैं' ॥६ ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।७॥

'ऋक्, यजुः, साम- ये वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतमत, वैष्णवमत आदि विभिन्न मत-मतान्तर हैं। इनमें (सभी लोग हमारा) यह मत उत्तम है, हमारा मत लाभप्रद है (दूसरों का नहीं;)- इस प्रकार की रुचियों की विचित्रता से सीधे- टेढ़े नाना मार्गों से चलने वाले साधकों के लिये एकमात्र प्राप्तव्य(गन्तव्य) आप ही हैं। जैसे सीधे-टेढ़े मार्गों से बहती हुई सभी नदियाँ अन्त में समुद्र में ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार सभी मतानुयायी आपके ही पास पहुँचते हैं'॥७॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।।८॥

'हे वरदानी शंकर! बूढ़ा बैल, खटिये का पावा, फरसा, चर्म, भस्म, सर्प, कपाल-बस इतनी ही आपके कुटुम्ब-पालन की सामग्री है। फिर भी इन्द्रादि देवताओं ने आपके कृपा- कटाक्ष से ही उन अपनी विलक्षण (अतुलनीय) समृद्धियों (भोगों)-को प्राप्त किया है; किन्तु आपके पास भोग की कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि विषय-वासनारूपी मृगतृष्णा स्वरूपभूत चैतन्य आत्माराम में रमण करने वाले को भ्रमित नहीं कर पाती है'॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता।। ९॥

'हे त्रिपुरसंहारक! कोई वादी इस सम्पूर्ण जगत को ध्रुव (नित्य) कहता है, कोई इस सबको अध्रुव (असत् या अनित्य) बताता है और कोई तो विश्व के समस्त पदार्थों में कुछ नित्य और कुछ अनित्य है-ऐसा कहता है। उन सब वादों से आश्चर्यचकित-सा मैं उन्हीं वादों (स्तुति-प्रकारों) से आपकी स्तुति करता हुआ लज्जित नहीं हो रहा हूँ; क्योंकि मुखरता (वाचालता) धृष्ट होती ही है' (उसे लज्जा कहाँ) ॥९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति।।१०॥

'हे गिरिश! (अग्नि-स्तम्भ के समान) आपका जो लिंगाकार तैजस रूप (विभूति) प्रकट हुआ उसके आदि और अन्त जानने के लिये ऊपर की ओर ब्रह्मा तथा नीचे की ओर विष्णु बड़े प्रयत्न से गये; परन्तु, (वे दोनों ही) पार पाने में असमर्थ रहे। तब उन दोनों ने श्रद्धा और भक्ति से पूर्ण बुद्धि से नत मस्तक हो आपकी स्तुति की। (तब उनकी स्तुति से प्रसन्न हो) आप उन दोनों के समक्ष स्वयं प्रकट हो गये। हे भगवन्! श्रद्धा-भक्तिपूर्वक की गयी आपकी सेवा (स्तुति) क्या फलीभूत नहीं होती? (अर्थात् अवश्य फलीभूत होती है) ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

'हे त्रिपुरारि! दशमुख रावण ने तीनों भुवनों का निष्कण्टक राज्य बिना प्रयत्न (अनायास) प्राप्त कर जो अपनी भुजाओं की युद्ध करने की खुजलाहट न मिटा सका (प्रतिभट से युद्ध करने की इच्छा पूर्ण न कर सका; क्योंकि कोई प्रतिभट मिला ही नहीं), यह आपके चरण कमलोंमें अपने दस सिर रूपी कमलों की बलि प्रदान करने में प्रवृत्त आपमें अविचल भक्ति का ही प्रभाव है' ॥११॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

'हे कैलासपति! आपकी सेवा से रावण की भुजाओं में शक्ति प्राप्त हुई थी। अभिमान में आकर वह अपना भुजबल आपके निवास स्थान कैलास के उठाने में भी तौलने लगा, पर आपने जो पैर के अँगूठे की नोक से जरा-सा कैलास को दबा दिया तो उस रावण की प्रतिष्ठा (स्थिति) पाताल में भी दुर्लभ हो गयी (वह नीचे-ही-नीचे खिसकता चला गया।) प्रायः यह निश्चित है कि नीच व्यक्ति समृद्धि को पाकर मोह में फँस जाता है' (कृतघ्न हो जाता है) ॥१२॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १३ ॥

'हे वरदानी शंकर! त्रिभुवन को वशवर्ती बनाने वाले बाणासुर ने इन्द्र की अपार (परमोच्च) सम्पत्तिको भी जो अपने समक्ष नीचा कर दिया, वह आपके चरणों के शरणागत (सेवक) उस बाणासुर के विषय में यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आपके समक्ष सिर झुकाना (नतमस्तक होना) किसकी (किस-किस विषय की) उन्नतिके लिये नहीं होता? अर्थात् आपके चरणोंमें सिर झुकानेसे सबकी सब प्रकारकी उन्नति होती है' ॥१३॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥ १४ ॥

'हे त्रिनेत्र शंकर! समुद्र मन्थन से उत्पन्न विष की विषम ज्वाला से असमय में ही ब्रह्माण्ड के नाश के भय से चकित देवों और दानवों पर दयार्द्र होकर विष पान करने वाले आपके कण्ठ में जो कालापन (नीला धब्बा) है, वह क्या आपकी शोभा नहीं बढ़ा रहा है। (अर्थात् महोपकार के कार्य से उत्पन्न होने के कारण और अधिक शोभा बढ़ा रहा है।) वस्तुतः संसार के भय को दूर करने के स्वभाव वाले महापुरुषों का विकार भी प्रशंसनीय होता है' ॥१४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्-
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः॥१५॥

'हे जगदीश! जिस कामदेव के बाण देव, असुर एवं नर समूह रूप विश्व में नित्य विजेता रहे, कहीं भी असफल होकर नहीं लौटते थे, वही कामदेव जब आपको अन्य देवताओं के समान (जेय) समझने लगा, तब आपके देखते ही वह स्मृति मात्र शेष रह गया (भस्म हो गया) और (सच है कि) जितेन्द्रियों का अपमान (उन्हें विचलित करने का उपक्रम) कल्याणकारी नहीं (अपितु घातक) होता है' ॥१५॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥१६॥

'हे ईश! जब आप ताण्डव (नर्तन) करते हैं तब आपके पैरों के आघात (चोट)-से पृथ्वी अचानक संशय (संकट)-को प्राप्त हो जाती है; आकाश मण्डल के ग्रह-नक्षत्र-तारे आपकी घूमते हुए भुजदण्ड (-की चोट)-से पीड़ित हो जाते हैं। (अत: आकाश-मण्डल भी संकटग्रस्त हो जाता है।) स्वर्ग आपकी खुली हुई (बिखरी) जटाओं के किनारों की चोट से बारम्बार दु:खद स्थिति को प्राप्त हो जाता है। यद्यपि आप जगत् की रक्षा के लिये ही ताण्डव करते है; फिर भी आपकी प्रभुता (तो) वाम (क्षोभद) हो ही जाती है' (सच है विभूति वाले का उचित कार्य भी विक्षोभ उत्पन्न कर देता है) ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

'हे जगदीश! समस्त आकाश में फैले तारों के सदृश फेन की शोभा वाला जो गंगाजल का प्रवाह है, वह आपके सिर पर जलबिन्दु के समान (छोटा) दिखायी पड़ा और (सिर से नीचे गिरने पर) उसी जल बिन्दु ने समुद्र रूपी करधनी (वलय)- के भीतर संसार को द्वीप के समान बना दिया। बस, इसी से आपका दिव्य शरीर सर्वोत्कृष्ट है- यह अनुमेय हो जाता है' ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

'हे परमेश्वर! त्रिपुरासुररूपी तृण को दग्ध करने के इच्छुक आपने पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथि, सुमेरु पर्वत को धनुष्, चन्द्र और सूर्य को रथ के दोनों चक्के और चक्रपाणि विष्णु को (जो) बाण बनाया, (तो) यह सब आडम्बर (समारम्भ) करने का क्या प्रयोजन था? (सर्वसमर्थ आप उसे अपने इच्छा मात्र से जला सकते थे) निश्चय ही अपने वशवर्ती (हाथ में स्थित) खिलौनों से खेलती हुई ईश्वर बुद्धि पराधीन नहीं होती' (अर्थात् वह स्वतन्त्र रूप से अपने खिलौनों से खेलती रहती है) ॥१८॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्॥१९॥

'हे त्रिपुरहर! भगवान् विष्णु ने आपके चरणों में एक हजार कमल चढ़ाने का संकल्प किया था। उनमें जो एक कमल कम पड़ गया तो उन्होंने अपना ही नेत्रकमल उखाड़कर चढ़ा दिया। बस, उनकी यही भक्ति की पराकाष्ठा सुदर्शनचक्र का स्वरूप धारण कर त्रिभुवन की रक्षा के लिये सदा जागरुक है' (भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर श्रीविष्णु को चक्र प्रदान किया था, जो विश्व का संरक्षण अनुग्रह-निग्रह द्वारा करता है) ॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः॥२०॥

'हे त्रिपुरारि! (बिना फल दिये ही) यज्ञादि के समाप्त हो जाने पर यज्ञकर्ताओं का यज्ञफल से सम्बन्ध करने के लिये (फल दिलाने के लिये) आप तत्पर रहते हैं। कर्म तो करने के बाद नष्ट हो जाता है (वह जड़ है)। अतः चेतन परमेश्वर की आराधना के बिना वह नष्टकर्म फल देने में समर्थ नहीं होता है। अतः आपको यज्ञों में फल देने में समर्थ दाता देखकर पुण्यात्मा लोग वेदवाक्यों में श्रद्धा-विश्वास रखकर (यज्ञ-) कर्म में तत्पर रहते हैं' ॥२०॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः॥२१॥

'हे शरणदाता शंकर! कार्य में कुशल प्रजाजनों का स्वामी प्रजापति दक्ष यज्ञ का यजमान (क्रतुपति) बना था। त्रिकालदर्शी ऋषिगण याज्ञिक (यज्ञ कराने वाले होता आदि) थे। देवगण यज्ञ के सामान्य सदस्य थे। फिर भी यज्ञ के फल के वितरण के व्यसनी आपसे ही यज्ञ का विध्वंस हो गया। अत: यह निश्चित है कि अश्रद्धा से किये गये यज्ञ (-कर्म) कर्ता के विनाश के लिये ही सिद्ध होते हैं' (दक्ष ने श्रद्धा-वर्जित यज्ञ किया था) ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥२२॥

'हे स्वामिन्! (एक बार) कामुक ब्रह्मा ने अपनी दुहिता से हठपूर्वक रमण करने की इच्छा की। वह लज्जा से मृगी बनकर भागी; तब ब्रह्मा भी मृग बनकर उसके पीछे दौड़े। आपने भी उन्हें दण्ड देने के लिये मृग के शिकारी के वेग के समान हाथ में धनुष लेकर बाण चला दिया। स्वर्ग में भी जाने पर ब्रह्मा आपके बाण से भयभीत हो रहे हैं। बाण ने आज भी उनको नहीं छोड़ा है; अर्थात् ब्रह्मा 'मृगशिरा' नक्षत्र बनकर भागे तो बाण 'आर्द्रा' नक्षत्र बनकर आज भी पीछा करता है' (ये दोनों आकाश मण्डल में आगे- पीछे देखे जा सकते हैं) ॥२२॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३ ॥

'हे यम नियमपरायण! हे वरद शंकर! अपने सौन्दर्य से शिव पर विजय प्राप्त कर लूँगा'- इस सम्भावना से हाथ में धनुष उठाये हुए कामदेव को सामने ही तुरन्त आपके द्वारा तिनके की भाँति भस्म होता हुआ देखकर भी यदि देवी (पार्वतीजी) अर्धनारीश्वर (आधे शरीर में पार्वती को स्थान देने)-के कारण आपको स्त्री-भक्त जानती हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि स्त्रियाँ (स्वभावतः) भोली-भाली होती हैं' ॥२३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि॥ २४॥

'हे वरद शंकरजी! आप श्मशानों में क्रीड़ा करते हैं, प्रेत-पिशाचगण आपके साथी हैं, चिता की भस्म आपका अंगराग है, आपकी माला भी मनुष्य की खोपड़ियों की है इस प्रकार यह सब आपका अमंगल स्वभाव (स्वाँग) देखने में भले ही अशुभ हो, फिर भी स्मरण करने वाले भक्तों के लिये तो आप परम मंगलमय ही हैं' ॥२४॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान्॥ २५ ॥

'हे प्रभो! (शम-दम आदि साधनों से सम्पन्न) यमी लोग शास्त्रोपदिष्ट विधि से-वायु रोककर (प्राणायाम कर) हृदय कमल में बहिर्मुखी (संकल्प-विकल्पात्मक) मनको सभी वृत्तियों से शून्य करके अपने भीतर जिस विलक्षण (आनन्दरूप परब्रह्म चिन्मात्र) तत्त्वका दर्शन कर रोमांचित हो जाते हैं और उनकी आँखें आनन्द के आँसुओं से भर जाती हैं, उस समय मानो वे अमृत के समुद्र में अवगाहन कर दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं; वह निर्गुण आनन्दस्वरूप ब्रह्म निश्चयरूप से आप ही हैं' ॥२५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं,
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥ २६ ॥

'हे भगवन्! परिपक्व बुद्धिवाले प्रौढ़ विद्वान्-आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं, आत्मा हैं-इस प्रकार की सीमित अर्थयुक्त वाणी आपके विषय में कहते रहे हैं; पर हम तो विश्व में ऐसा कोई तत्त्व (वस्तु) नहीं देखते (जानते) जो स्वयं साक्षात् आप न हों' ॥२६ ॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥ २७ ॥

'हे शरण देने वाले। 'ॐ' यह शब्द अपने व्यस्त (पृथक्-पृथक् अक्षर वाले) अकार, उकार, मकार रूप से तीनों वेद (ऋक्, यजुः, साम), तीनों अवस्था (जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति), तीनों लोक (स्वर्ग-भूमि-पाताल), तीनों देवता (ब्रह्मा-विष्णु-महेश), तीनों शरीर (स्थूल-सूक्ष्म-कारण), तीनों रूप (विश्व-तैजस-प्राज्ञ) आदि के रूप में आपका ही प्रतिपादन करता है तथा अपने अवयवों के समष्टि (संयुक्त-समस्त)-रूप (ॐ)-से निर्विकार निष्कल तीन अवस्था एवं त्रिपुटियों से रहित आपके तुरीय स्वरूप की सूक्ष्म ध्वनियों से ग्रहणकर प्रतिपादन करता है' (ओम् आपके स्वरूप का सर्वतः निर्वचन करता है) ॥२७॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥ २८ ॥

'हे महादेव! आपके जो आठ अभिधान (नाम)-भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम, ईशान हैं, उनमें प्रत्येक में वेद मन्त्र भी पर्याप्त मात्रा में विचरण करते हैं और वेदानुगामी पुराण भी इन नामों में विचरते हैं; अर्थात् वेद-पुराण सभी उन नामों का अतिशय प्रतिपादन करते हैं। अतः परम प्रिय एवं प्रत्यक्ष समस्त जगत् के आश्रय आपको मैं साष्टांग प्रणाम करता हूँ' ॥२८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमितिसर्वाय च नमः ॥२९॥

'हे अतिनिकटवर्ती और एकान्त (निर्जन) वन-विहार के प्रेमी! आपको प्रणाम है; अति दूरवर्ती आपको प्रणाम है। हे कामारि! अति लघु (सूक्ष्मरूपधारी) आपको प्रणाम है। हे अति महान्! आपको प्रणाम है। हे त्रिनेत्र! वृद्धतम आपको नमस्कार है; अत्यन्त युवक आपको प्रणाम है। सर्वस्वरूप आपको नमस्कार है; परोक्ष, प्रत्यक्ष पद से परे अनिर्वचनीय सबके अधिष्ठानस्वरूप आपको नमस्कार है' ॥२९॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

'विश्व की सृष्टि के लिये रजोगुण की अधिकता धारण करने वाले ब्रह्मा-रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। विश्व के संहार के लिये तमो गुण की अधिकता धारण करने वाले हर (रूद्र)-रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। समस्त जीवों के सुख (पालन)- के लिये सत्त्वगुण की अधिकता धारण करने वाले विष्णु-रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। स्वयं प्रकाश मोक्ष के लिये त्रिगुणातीत, समस्त द्वैत से रहित मंगलमय अद्वैत (आप) शिव को बार-बार नमस्कार है' ॥३०॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

हे वरद शिव! (अविद्या आदि) कष्टों के वशीभूत (अल्पशक्ति युक्त) कहाँ तो यह मेरा चित्त और कहाँ सम्पूर्ण गुणों की सीमा के बाहर पहुँची सदा (त्रिकाल) स्थायिनी आपकी ऋद्धि (विभूति)। (दोनों में बहुत असमानता है।) इसी भय से ग्रस्त आपके चरणों की भक्ति ने मुझे उत्साहित कर आपके चरणों में मुझसे वाक्य रूपी पुष्पोपहार, वाक्यकुसुमांजलि, वाक्यचय की स्तुति रूपी अंजलि समर्पित करायी है' ॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥३२॥

'हे ईश! यदि काले पर्वत के समान स्याही हो, समुद्र की दवात हो, कल्पवृक्ष की शाखाओं की कलम बने, पृथ्वी कागज बने और इन साधनों से यदि सरस्वती (स्वयं) सर्वदा (जीवन पर्यन्त) आपके गुणों को लिखें तब भी वे आपके गुणों का पार नहीं पा सकेंगी' ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रॅथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

'इस प्रकार शिव के सभी गणों में श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने दैत्येन्द्रों, सुरेन्द्रों एवं मुनीन्द्रों से पूजित, समस्त गुणों से परिपूर्ण होते हुए भी निर्गुण जगदीश्वर चन्द्रशेखर भगवान् शिवजी के इस सुन्दर स्तोत्र को बड़े छन्दों में (स्तुति-हेतु) बनाया' ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्-
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्त्तिमांश्च ॥३४॥

'जो व्यक्ति पवित्र अन्तःकरण (हृदय)-से परम भक्ति के साथ भगवान् शंकर के इस प्रशंसनीय स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, वह इस लोक में पर्याप्त धन एवं आयु को पाता है, पुत्रवान् और यशस्वी होता है तथा (मुत्यु के बाद) शिवलोक को प्राप्त कर शिव के समान (आनन्दमग्न) रहता है' ॥३४॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५॥

'मन्त्र आदि की दीक्षा, दान, तप, तीर्थाटन, ज्ञान तथा यज्ञादि-ये सब शिवमहिम्नः स्तोत्र की सोलहवीं कला (अंश)-को भी नहीं पा सकते' ॥३५॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम्।।३६॥

'पुष्पदन्त नामक गन्धर्व रचित यह सम्पूर्ण स्तोत्र (आदि से अन्त तक) पवित्र है, अनुपम है, मनोहर है, शिव (मंगलमय) है। इसमें ईश्वर (शिव)-का वर्णन है' ॥३६॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥३७॥

'महेश से बढ़कर (उत्तम) कोई देवता नहीं है, (इस) शिव महिम्नः स्तोत्र से बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है। अघोर मन्त्र (ॐ)- से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है, गुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं होता है' ॥३७॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा-
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः।:॥३८॥

'बालचन्द्र को सिर पर धारण करने वाले देवाधिदेव महादेव का पुष्पदन्त नामक दास, जो सभी गन्धर्वों का राजा था, इन शिवजी के कोप से अपने ऐश्वर्य से च्युत हो गया था। (उसके बाद) उसने इस परम दिव्य शिवमहिम्नःस्तोत्र की रचना की' (जिससे पुनः उनकी कृपा प्राप्त की) ॥३८॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

'यदि मनुष्य हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त से देवताओं, मुनियों के पूज्य, स्वर्ग एवं मोक्ष को देने वाले, पुष्पदन्तरचित इस अमोघ (अवश्य फल देने वाले) स्तोत्र का पाठ करता है तो वह किन्नरों से स्तुति (प्रशंसा) प्राप्त करता हुआ भगवान् शिव के समीप (शिव लोक में) पहुँच जाता है' ॥३९॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

'पुष्पदन्त के मुख कमल से निकले हुए पापहारी शिवजी के प्रिय इस स्तोत्र को कण्ठस्थ (याद) कर एकाग्रचित (मनोयोग)- से पाठ करने से समस्त प्राणियों के स्वामी महेश बहुत प्रसन्न होते हैं' ॥४०॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४१॥

'उस पुष्पदन्त ने यह शिवमयी पूजा श्रीमान् शंकर के चरणों में समर्पित की है। उसी प्रकार मैंने भी (पाठरूपी पूजा) समर्पित की है। अतः इससे सदाशिव मुझ पर (भी) प्रसन्न हों' ॥४१॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर!॥४२॥

'हे दिव्यगुणसम्पन्न शिव! (प्रमादवश) जो अक्षर और पद, अशुद्ध उच्चारण हुआ हो, हे परमेश्वर! वह सब क्षमा कर दें तथा सदा आप प्रसन्न होवें'।

हरिः। ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ इति शिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

॥ अथ शिवनामावलिः॥

ॐ महादेव! शिव! शङ्कर! शम्भो! उमाकान्त! हर! त्रिपुरारे!।
मृत्युञ्जय! वृषभध्वज! शूलिन्! गङ्गाधर! मृड! मदनारे!॥

हर! शिव! शङ्कर! गौरीशं, वन्दे गङ्गाधरमीशम्।
रुद्रं पशुपतिमीशाानं, कलये काशीपुरीनाथम्॥

जय शम्भो! जय शम्भो! शिव! गौरीशङ्कर! जय शम्भो!।
जय शम्भो! जय शम्भो! शिव! गौरीशङ्कर! जय शम्भो!॥

शिव! शिवेति शिवेति शिवेति वा, हर! हरेति हरेति हरेति वा।
भव! भवेति भवेति भवेति वा, मृड! मृडेति मृडेति मृडेति वा।
भज मनः शिवमेव निरन्तरम्॥

॥ द्वादशज्योतिर्लिङ्गानि ॥

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥१॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥२॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥३॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥४॥

॥ श्रीरुद्राष्टकम् ॥

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं

विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।

निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं

चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥१॥

निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं

गिरा-ग्यान-गोतीतमीशं गिरीशं ।

करालं महाकाल-कालं कृपालं

गुणागार-संसारपारं नतोऽहं ॥२॥

तुषाराद्रि-संकाश-गौरं गभीरं

मनोभूत-कोटि- प्रभा-श्री शरीरं।

स्फुरन्मौलि-कल्लोलिनी चारु गङ्गा

लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा ॥३॥

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं

प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालं।

मृगाधीशचर्माम्बरं मुंडमालं

प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि॥४॥

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं
अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं।
त्रयः शूल-निर्मूलनं शूलपाणिं
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥५॥

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।
चिदानन्द संदोह मोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥६॥

न यावद् उमानाथ-पादारविन्दं
भजंतीह लोके परे वा नराणाम्।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥७॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां
नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं।
जरा-जन्म-दुःखौघ-तातप्यमानं
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥८॥

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥९॥

॥ इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं रुद्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम् ॥

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय॥१॥

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय॥२॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय॥३॥

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य - मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय॥४॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय॥५॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

॥ श्रीशिवताण्डवस्तोत्रम् ॥

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥१॥

जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी-
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम॥२॥

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे ।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि
क्वचिद्दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि॥३॥

जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभा-
कदम्बकुङ्कुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे।
मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनो विनोदमद्भुतं बिभर्त्तु भूतभर्तरि॥४॥

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः।
भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः॥५॥

ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा-
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम्।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः॥६॥

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल-
द्धनञ्जयाहुतीकृतप्रचण्डपञ्चसायके।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम॥७॥

नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमःप्रबन्धबद्धकन्धरः।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः॥८॥

प्रफुल्लनीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमप्रभा-
वलम्बिकण्ठकन्दली-रुचिप्रबद्धकन्धरम्।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे॥९॥

अखर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरी-
रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम्।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे॥१०॥

जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजङ्गमश्वस-
द्विनिर्गमत्क्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट्।
धिमिद्धिमिद्धिमिद्ध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः॥११॥

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो-
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामही-महेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदा सदाशिवं भजाम्यहम्॥१२॥

कदा निलिम्पनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन्।
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन्।
विलोललोललोचनो ललामभाललग्नकः।
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम्॥१३॥

इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन्स्मरन्ब्रुवन्नरो विशुद्धिमेति सन्ततम्।
हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं
विमोहनं हि देहिनां सुशङ्करस्य चिन्तनम्॥१४॥

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनपरं पठति प्रदोषे।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां
लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥१५॥

॥ इति श्रीरावणकृतं शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

श्री हनुमान चालीसा

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥
बुद्धिहीन तनु जानिके सुमिरौं पवन-कुमार ।
बल बुद्धि बिद्या देहु मोहिं हरहु कलेस बिकार॥

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहूँ लोक उजागर॥
राम दूत अतुलित बल धामा। अंजनिपुत्र पवनसुत नामा॥
महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी॥
कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुंडल कुंचित केसा॥
हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै। काँधे मूँज जनेऊ साजै॥
संकर सुवन केसरीनंदन। तेज प्रताप महा जग बंदन॥
बिद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर॥
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लषन सीता मन बसिया॥
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा॥
भीम रूप धरि असुर सँहारे। रामचन्द्र के काज सँवारे॥
लाय सजीवन लखन जियाये। श्रीरघुबीर हरषि उर लाये॥
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई॥
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा॥
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते॥
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा॥
तुम्हरो मंत्र विभीषन माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना॥
जुग सहस्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं॥
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥
राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे।
सब सुख लहैं तुम्हारी सरना। तुम रच्छक काहू को डर ना॥
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनों लोक हाँक तें काँपे॥
भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥
संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै॥
सब पर राम तपस्वी राजा। तिनके काज सकल तुम साजा॥
और मनोरथ जो कोइ लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै॥
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा॥
साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता॥
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा॥
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै॥
अंत काल रघुबर पुर जाई। जहां जन्म हरि-भक्त कहाई॥
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई॥
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं॥
जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहिं बंदि महा सुख होई॥
जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा॥
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा॥

दोहा- पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप।।

॥संकटमोचन हनुमानष्टक॥

बाल समय रबि भक्षि लियो तब, तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।
ताहि सों त्रास भयो जग को, यह संकट काहु सों जात न टारो।
देवन आनि करी बिनती तब, छाँड़ि दियो रबि कष्ट निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥१॥

बालि की त्रास कपीस बसै गिरि, जात महाप्रभु पंथ निहारो।
चौंकि महा मुनि साप दियो तब, चाहिय कौन बिचार बिचारो।
कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु, सो तुम दास के सोक निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥२॥

अंगद के संग लेन गये सिय, खोज कपीस यह बैन उचारो।
जीवत ना बचिहौ हम सो जु, बिना सुधि लाए इहाँ पगु धारो।
हेरि थके तट सिंधु सबै तब, लाय सिया-सुधि प्रान उबारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥३॥

रावन त्रास दई सिय को सब, राक्षसि सों कहि सोक निवारो।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु, जाय महा रजनीचर मारो।
चाहत सीय असोक सों आगि सु, दै प्रभु मुद्रिका सोक निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥४॥

बान लग्यो उर लछिमन के तब, प्रान तजे सुत रावन मारो।
लै गृह बैद्य सुषेन समेत, तबै गिरि द्रोन सु बीर उपारो।
आनि सजीवन हाथ दई तब, लछिमन के तुम प्रान उबारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥५॥

रावन जुद्ध अजान कियो तब, नाग कि फाँस सबै सिर डारो।
श्री रघुनाथ समेत सबै दल, मोह भयो यह संकट भारो।
आनि खगेस तबै हनुमान जु, बंधन काटि सुत्रास निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥ ६ ॥

बंधु समेत जबै अहिरावन, लै रघुनाथ पताल सिधारो।
देबिहिं पूजि भली बिधि सों बलि, देउ सबै मिलि मंत्र बिचारो।
जाय सहाय भयो तब ही, अहिरावन सैन्य समेत सँहारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥ ७ ॥

काज किये बड़ देवन के तुम, बीर महाप्रभु देखि बिचारो।
कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुमसों नहिं जात है टारो।
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु, जो कछु संकट होय हमारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो॥ ८ ॥

दोहा-

लाल देह लाली लसे, अरु धरि लाल लंगूर।
बज्र देह दानव दलन, जय जय जय कपि सूर॥

॥ इति संकटमोचन हनुमानाष्टक सम्पूर्ण॥

॥ श्रीआदित्यहृदयस्तोत्रम् ॥

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम्।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥१॥

दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम्।
उपगम्याब्रवीद्राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥२॥

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम्।
येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे ॥३॥

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्।
जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमं शिवम् ॥४॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥५॥

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम्।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥६॥

सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः।
एष देवासुरगणाँल्लोकान् पाति गभस्तिभिः ॥७॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपाम्पतिः ॥८॥

पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः।
वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥९॥

आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः ॥१०॥

हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान्।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोंऽशुमान ॥११॥

हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥१२॥

व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः।
घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवङ्गमः ॥१३॥

आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥१४॥

नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते ॥१५॥

नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥१६॥

जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥१७॥

नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥१८॥

ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः॥१९॥

तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने ।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः॥२०॥

तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे।
नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे॥२१॥

नाशयत्येष वै भूतं तमेव सृजति प्रभुः।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः॥२२॥

एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः।
एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम्॥२३॥

देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः॥२४॥

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव॥२५॥

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्।
एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि॥२६॥

अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम्॥२७॥

एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत् तदा।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान्॥२८॥

आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान्॥२९॥

रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा जयार्थं समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता वृतस्तस्य वधेऽभवत्।।३०॥

अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति।।३१॥

॥ श्रीवाल्मीकीये रामायणे युद्धकाण्डे, अगस्त्यप्रोक्तमादित्यहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

चाक्षुषोपनिषद् (चाक्षुषी विद्या)

विनियोग- ॐ अस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिर्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता चक्षूरोगनिवृत्तये विनियोगः।

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान्। शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथा अहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय।

ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवानञ्छुचिरुपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः।

य इमां चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुले अन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति। ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिनी अहोवाहिनी स्वाहा।

॥श्रीकृष्णयजुर्वेदीया चाक्षुषी विद्या सम्पूर्णा॥

इस चाक्षुषी विद्या के श्रद्धा-विश्वासपूर्वक पाठ करने से नेत्र के समस्त रोग दूर हो जाते हैं। आँख की ज्योति स्थिर रहती है। इसका पाठ नित्य करनेवाले के कुलमें कोई अन्धा नहीं होता। पाठ के अन्त में गन्धादियुक्त जल से सूर्य को अर्घ्य देकर नमस्कार करना चाहिये।

॥ त्रिगुणात्मक शिवजी की आरती ॥

ॐ जय शिव ओंकार हर शिव ओंकार।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्द्धांगीधर।। ॐ हर हर हर महादेव।

एकानन चतुरानन पंचानन राजे।
हंसासन गरुड़ासन वृषवाहन साजे।। ॐ हर हर हर महादेव।

दो भुज चारु चतुर्भुज दश भुज ते सोहे।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन जन मोहे।। ॐ हर हर हर महादेव।

अक्षमाला बनमाला रुण्डमाला धारी।
चंदन मृगमद सोहै भाले शशिधारी।। ॐ हर हर हर महादेव।

श्वेताम्बर पीताम्बर बाघाम्बर अंगे।
सनकादिक ब्रह्मादिक भूतादिक संगे।। ॐ हर हर हर महादेव।

कर मध्ये कमण्डलु चक्र त्रिशूल धर्ता।
जगकर्ता जगहर्ता जगपालन कर्ता।। ॐ हर हर हर महादेव।

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव न जानत अविवेका।
प्रणवाक्षर के मध्ये यह तीनों एका।। ॐ हर हर हर महादेव।

काशी में विश्वनाथ विराजत, नन्दी ब्रह्मचारी।
नित उठि भोग लगावत महिमा अतिभारी।। ॐ हर हर हर महादेव।

त्रिगुण शिव की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानन्द स्वामी मनवांछित फल पावे।। ॐ हर हर हर महादेव।

॥ॐ जय जगदीश हरे॥

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट, क्षण में दूर करे॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ मैं जिसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ किसकी॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

तुम करूणा के सागर तुम पालनकर्ता।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय, तुमको मैं कुमति॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

दीनबंधु दुःखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा मैं तेरे॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

तन मन धन, सब कुछ है तेरा।
तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे मेरा॥ ॐ जय जगदीश हरे॥

श्याम सुन्दर जी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत श्रद्धानन्द स्वामी मनवांछित फल पावें॥ ॐ जय जगदीश हरे॥